मिट्टी की खुशबू और कन्नौज की सदियों पुरानी रिवायत

बारिश में कुछ बूंदें पृथ्वी का पहला स्पर्श करती हैं और पूरा वातावरण एक मोहक सुगंध से भर जाता है। मिट्टी की इस खुशबू को पेट्रिकोर कहते हैं। कई लोगों के लिए यह मिट्टी की खुशबू बचपन के बेफिक्र दिनों की पुरानी खुशबू है। दूसरों के लिए, यह प्रकृति का सुकून देने वाला स्पर्श है। भारतीय गीतकारों के लिए यह उनकी पसंदीदा प्रेरणा है। कई लोग इसके आरामदेह और शांत प्रभाव के लिए भी इसे संजोते हैं, इसलिए इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि यह सरल, लेकिन जटिल, विशिष्ट, लेकिन प्राकृतिक और गर्म, लेकिन ताजा खुशबू इतनी सारी कविताओं और गीतों का विषय रही है। आह! इस खुशबू का गर्म आलिंगन बेजोड़ है। मिट्टी के इत्र (जिसे अत्तर भी कहा जाता है), पेट्रिकोर परफ्यूम और सुगंधित मोमबत्तियों की बदौलत आप जादुई गंध का अनुभव कर सकते हैं। ये उत्पाद उस आरामदायक मिट्टी की सुगंध की नकल करने के लिए बनाए गए हैं, इसलिए आप इसे लगा सकते हैं या घर के अंदर प्रकृति के जादू का आनंद ले सकते हैं, जो मालोन और ला लेबो जैसे कई अंतर्राष्ट्रीय ब्रांड पेट्रिकोर परफ्यूम बेचते हैं, लेकिन ये बहुत बाद में आए। यहां तक कि पेट्रिकोर शब्द भी बहुत बाद में आया।

देवेंद्र सिंह देव
शिक्षक, कन्नौज

सदियों पुरानी परंपरा और मिट्टी का इत्र

सदियों से कन्नौज के परफ्यूम बनाने वाले, जिसे भारत की परफ्यूम राजधानी के रूप में जाना जाता है। मिट्टी के इत्र बनाते रहे हैं, जो मौसम की पहली बारिश की खुशबू को छोटी बोतलों में कैद करते हैं, जहां तक पेट्रिकोर शब्द की बात है, इसे 1960 के दशक में ऑस्ट्रेलियाई शोधकर्ताओं इसाबेल जॉय बेयर और रिचर्ड ग्रेनफेल थॉमस द्वारा सूखी धरती पर बारिश होने पर निकलने वाली इस विशिष्ट गंध का अध्ययन करने के बाद गढ़ा गया था। 1965 में नेचर जर्नल में प्रकाशित अपने अध्ययन में बेयर और थॉमस ने पाया कि मिट्टी की गंध शुष्क अवधि के दौरान कुछ पौधों द्वारा उत्सर्जित यौगिकों द्वारा उत्पन्न होती है। यह तेल, अन्य अणुओं के साथ, मिट्टी और चट्टानों द्वारा अवशोषित किया जाता है। जब बारिश होती है, तो इन छिद्रपूर्ण सामग्रियों के नम होने से तेल हवा में निकलता है, जो एक्टिनोमाइसेट्स जैसे मिट्टी में रहने वाले बैक्टीरिया द्वारा उत्पादित जियोस्मिन नामक एक अन्य यौगिक के साथ बंध जाता है।

पेट्रिकोर शब्द की उत्पत्ति

पेट्रिकोर शब्द- इसका ग्रीक पौराणिक कथाओं से संबंध है। शोधकर्ताओं की जोड़ी ने इस शब्द को ग्रीक शब्दों 'पेट्रा' से बनाया है, जिसका अर्थ है पत्थर और 'इकोर', जिसका अर्थ है देवताओं की नसों में बहने वाला तरल पदार्थ। कन्नौज में, जहां 300 से ज्यादा परफ्यूमरी हैं, जो सदियों पुरानी आसवन विधियों का उपयोग करके तेल-आधारित प्राकृतिक सुगंध (इत्र) तैयार करते हैं, मिट्टी का इत्र सदियों से बनाया जाता रहा है। पेट्रिकोर परफ्यूम अब दुनियाभर में लोकप्रिय हैं, भारत इस खुशबू का उपयोग करके धारण करने योग्य खुशबू बनाने वाला पहला स्थान था। कन्नौज में आपको कई परफ्यूमर्स मिल जाएंगे, जो ये सिग्नेचर मिट्टी के इत्र बेचते हैं। इनमें से ज्यादातर B2B कंपनियां हैं, जिनकी ऑनलाइन रिटेल मौजूदगी भी है, लेकिन इन छोटी-छोटी इत्र की बोतलों में क्या होता है, जो आपको तुरंत उस पल की याद दिलाती हैं, जिसका लंबे समय से इंतज़ार हो रहा है?

मिट्टी के इत्र का रहस्य

खैर, शुरुआत में कड़ी मेहनत के अनगिनत घंटे और पकी हुई मिट्टी की भारी मात्रा। मिट्टी के इत्र बनाने के लिए पारंपरिक देग और भापका विधि का उपयोग किया जाता है। 'अत्तर पकी हुई मिट्टी की खुशबू को आसवित करके बनाया जाता है, आमतौर पर मानसून के मौसम की पहली बारिश के बाद। मिट्टी को इकट्ठा किया जाता है, पकाया जाता है और फिर भाप से आसवित करके इसकी अनूठी सुगंध निकलती है," दिव्य गुप्ता बताते हैं। प्रक्रिया ऊपरी मिट्टी से मिट्टी निकालने से शुरू होती है, जिसे फिर भट्टी में पकाया जाता है। पकी हुई मिट्टी, अक्सर डिस्क या कुल्हड़ के रूप में, बैचों में डेग (एक बड़े तांबे के बर्तन) में पानी में डुबोई जाती है। भाप (मिट्टी के सार को ले जाने वाली) को ऊपर उठने देने के लिए डेग को सावधानी से गर्म किया जाता है। यह भाप फिर एक बांस की नली के माध्यम से एक भापका (एक रिसीवर फ्लास्क) में जाती है, जिसमें बेस ऑयल होता है और अत्तर बनता है। एक लीटर मिट्टी का इत्र बनाने में एक हफ्ते से लेकर एक महीने तक का समय लग सकता है, जो कि वांछित गुणवत्ता और तीव्रता पर निर्भर करता है।' पहले, मिट्टी के इत्र बनाने के लिए शुद्ध चंदन के तेल का इस्तेमाल किया जाता था, लेकिन बढ़ती कीमतों के कारण, अब कई लोग इसके बजाय कैरियर ऑयल का इस्तेमाल करते हैं। मिट्टी का इत्र कन्नौज के परफ्यूम बनाने वालों के लिए सबसे ज्यादा बिकने वाले उत्पादों में से एक है।

अनोखी परंपरा

दुल्हन-दूल्हे की "ब्लैकनिंग"

शादी हर व्यक्ति के जीवन का एक महत्वपूर्ण पड़ाव होती है और हर संस्कृति में इसे खास महत्व दिया जाता है। दुनिया के अलग-अलग देशों में विवाह को मनाने की परंपराएं अलग हैं, जिनमें से कई पहली नजर में अजीब लगती हैं, लेकिन उनके पीछे गहरे अर्थ छिपे होते हैं। कहीं शादी के दौरान दूल्हे का जूता चुराया जाता है, तो कहीं नए जोड़े के घर जाकर बर्तन तोड़ना शुभ माना जाता है। स्कॉटलैंड में शादी से पहले दूल्हा-दुल्हन पर कालिख और गंदी चीजें डालने की परंपरा है, जिससे यह परखा जाता है कि वे कठिन परिस्थितियों में भी साथ रह सकते हैं। जर्मनी में टूटे बर्तनों को मिलकर साफ करना जीवन की समस्याओं को साथ सुलझाने का प्रतीक है। ऐसी परंपराएं यह बताती हैं कि शादी केवल रस्मों का आयोजन नहीं, बल्कि आपसी समझ, सहयोग और जीवन की चुनौतियों के लिए मानसिक तैयारी भी है।

स्कॉटलैंड में शादी से पहले "ब्लैकनिंग ऑफ द ब्राइड (और ग्रूम)" रस्म प्रचलित है। इस रस्म में शादी से कुछ दिन पहले दूल्हा-दुल्हन या कभी-कभी दोनों को दोस्तों और रिश्तेदारों द्वारा पकड़कर, उन पर कालिख, आटा, अंडे, मछली, गोंद, दूध या दूसरी गंदी चीजें डाली जाती हैं। इसके बाद उन्हें गांव या मोहल्ले में घुमाया भी जाता है, ताकि सार्वजनिक रूप से उनका "अपमान" हो सके, लेकिन इसके पीछे भावनात्मक अर्थ काफी गहरा है। स्कॉटिश संस्कृति में माना जाता है कि विवाह जीवन की सबसे कठिन जिम्मेदारियों में से एक है। अगर कोई जोड़ा शादी से पहले इस तरह की शर्मिंदगी, मजाक और असुविधा को हंसते-हंसते और साथ-साथ सहन कर ले, तो वह आगे आने वाली आर्थिक, सामाजिक और मानसिक चुनौतियों का भी सामना कर सकता है।

आर्ट गैलरी

माइकल एंजेलो की 'सिस्टिन चैपल सीलिंग'

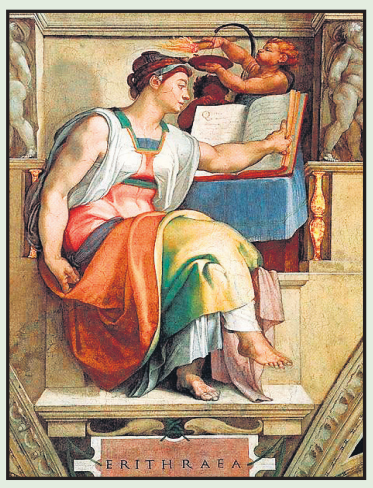

मशहूर रेनेसां कलाकार माइकल एंजेलो की 'सिस्टिन चैपल सीलिंग' को लगभग 1509 में बनाया गया था। यह कलाकृति धार्मिक पेंटिंग शैली की है और सिस्टिन चैपल पेंटिंग्स की बड़ी सीरीज का हिस्सा है। यह कलाकृति एरिथ्रियन सिबिल को दिखाती है, जो क्लासिकल दुनिया की भविष्य बताने वाली सिबिल में से एक थीं, जिनके बारे में कहा जाता था कि उन्होंने ईसाई धर्म के आने की भविष्यवाणी की थी। माइकल एंजेलो ने उन्हें हाई रेनेसां शैली के अनुसार भव्यता और गहरे ध्यान के साथ दिखाया है, जिसकी खासियत सामंजस्यपूर्ण रचना, रूप की स्पष्टता और शांत रंग हैं। सिबिल संगमरमर जैसे सिंहासन पर शक्तिशाली और शांत भाव से बैठी हैं, उनका शरीर मानव शरीर रचना में माइकल एंजेलो की विशेषज्ञता को दिखाता है। उन्होंने एक चमकीला नारंगी और हरा चोगा पहना है, जो कपड़े और उसकी सिलवटों पर रोशनी के खेल को दिखाने में कलाकार के कौशल को दर्शाता है। उनके सिर पर एक खास हेडपीस सजा है और उनकी नज़रें उस बड़ी किताब पर टिकी हैं, जिसे वह पढ़ रही हैं, जो शायद उनकी भविष्यवाणियों के ग्रंथों का प्रतीक हो सकती है। दो पुट्टी, या छोटे देवदूत जैसी आकृतियां उनके साथ हैं। एक उनके सिर के ऊपर एक किताब पकड़े हुए है, जो दृश्य के बौद्धिक और भविष्य बताने वाले विषय पर जोर देता है, जबकि दूसरा गति में लगता है, जो सिबिल के शांत स्वभाव के विपरीत एक गतिशील कंट्रास्ट प्रदान करता है।

आस-पास की वास्तुकला को भ्रम पैदा करने वाले तरीके से पेंट किया गया है, जो सिबिल को इस तरह से फ्रेम करता है कि वह चैपल की छत के बड़े सजावटी कार्यक्रम में एकीकृत हो जाती है। उनके नीचे लिखा 'एरिथ्रिया' शिलालेख शीर्षक और उनकी पहचान दोनों का काम करता है। आकृति की यथार्थवादिता और जीवंतता, संतुलित रचना और माइकल एंजेलो द्वारा फ्रेस्को तकनीक का शानदार उपयोग, इस कलाकृति को हाई रेनेसां कला के एक प्रमुख उदाहरण के रूप में एक स्थायी विरासत प्रदान करता है।

माइकल एंजेलो के बारे में

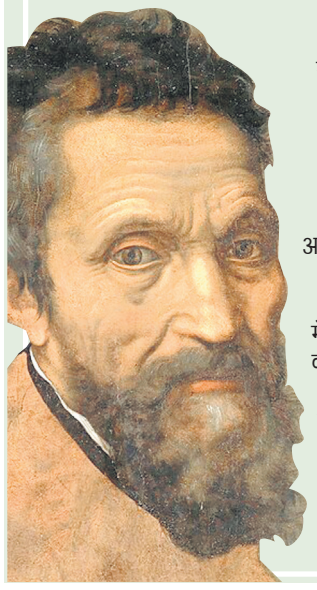

माइकल एंजेलो 1475 में पैदा हुए। वो इतालवी चित्रकार थे, जो रेनेसां काल के दौरान कला की दुनिया में अपने शानदार योगदान के लिए जाने जाते हैं। धार्मिक और क्लासिकल विषयों पर ध्यान केंद्रित करते हुए, माइकल एंजेलो के काम ने जटिल डिटेल्स को पकड़ने की उनकी अविश्वसनीय प्रतिभा को दिखाया। उनकी सबसे मशहूर उपलब्धि सिस्टिन चैपल सीलिंग है। रेनेसां आंदोलन में एक प्रमुख व्यक्ति के रूप में, माइकल एंजेलो ने प्राचीन ग्रीस और रोम की क्लासिकल कला और मूर्तिकला से बहुत प्रेरणा ली। यह प्रभाव उनके यथार्थवादी मानव रूपों के उपयोग, डिटेल्स पर ध्यान और अपने कामों में पौराणिक तत्वों को शामिल करने से साफ दिखता है। इसके अलावा, वह लियोनार्डो दा विंची और राफेल जैसे अन्य प्रसिद्ध कलाकारों से भी प्रेरित थे। उनकी मृत्यु 1564 में हुई।

लोकायन

नाटी: हिमाचल की लोकआत्मा का लयबद्ध उत्सव

हिमाचल प्रदेश की लोक संस्कृति में नाटी नृत्य केवल एक कला रूप नहीं, बल्कि सामूहिक जीवन, उत्सव और परंपरा की जीवंत अभिव्यक्ति है। सिरमौर, कुल्लू और शिमला जिलों से जन्मा यह नृत्य आज पूरे हिमाचल की पहचान बन चुका है। नाटी को गिनीज बुक ऑफ वर्ल्ड रिकॉर्ड्स में सबसे बड़े लोक नृत्य के रूप में दर्ज किया जाना इसकी लोकप्रियता और सामूहिकता का प्रमाण है। पर्व-त्योहारों, मेलों और धार्मिक आयोजनों में जब सैकड़ों लोग एक साथ ताल में कदम बढ़ाते हैं, तो हिमाचल की सांस्कृतिक आत्मा सजीव हो उठती है।

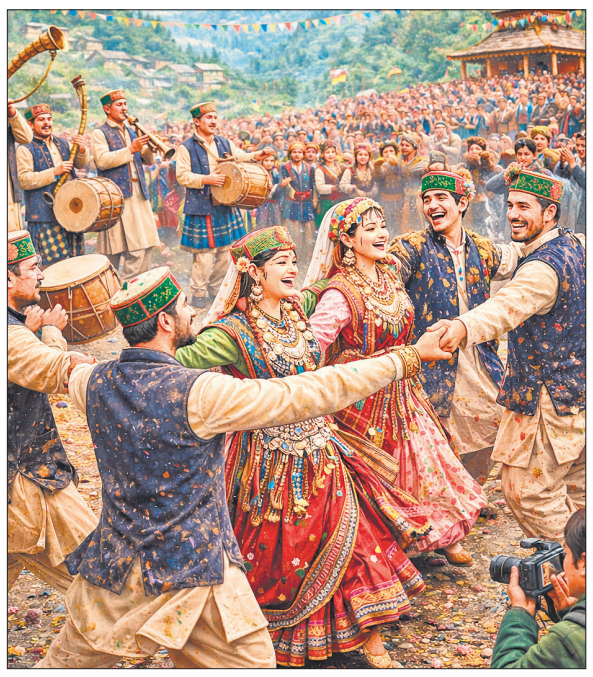

नाटी की लोकप्रियता राज्य की सीमाओं तक सीमित नहीं रही। चंडीगढ़ जैसे शहरी क्षेत्रों में हिमाचली युवा सांस्कृतिक कार्यक्रमों के माध्यम से इसे नई पीढ़ी तक पहुंचा रहे हैं। वहीं उत्तराखंड के जौनसारी समुदाय में भी नाटी की परंपरा इसकी सांस्कृतिक व्यापकता को दर्शाती है। हिमाचल प्रदेश में नाटी की अनेक शैलियां प्रचलित हैं, जिनमें महासुवी, सिरमौरी, लाहौली और किन्नौरी नाटी प्रमुख हैं। किन्नौरी नाटी विशेष रूप से मूक अभिनय जैसी होती है, जिसमें नर्तक धीमी गति और सूक्ष्म भाव-भंगिमाओं के माध्यम से कथा कहते हैं। नाटी नृत्यों में 'लोसर शोने चुकसोम' का विशेष महत्व है, जिसका संबंध लोसाई यानी नव वर्ष से है। इस नृत्य में फसल बोने, काटने और ग्रामीण जीवन की गतिविधियों का सजीव चित्रण किया जाता है।

कुल्लू की नाटी अपने धार्मिक और नाटकीय पक्ष के लिए जानी जाती है। इसमें भगवान कृष्ण, गोपियों की रासलीला और चंद्रावली से जुड़े प्रसंगों को नृत्य के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। नर्तक एक-दूसरे के हाथ थामकर संगीत और ताल के अनुसार सामूहिक गति करते हैं। नाटी की लगभग तेरह शैलियां मानी जाती हैं। पहले यह नृत्य मुख्य रूप से पुरुषों द्वारा किया जाता था, जो पारंपरिक टोपी, चूड़ीदार पजामा और लहराते कुर्ते पहनते थे, लेकिन समय के साथ इसमें महिलाओं की भागीदारी भी बढ़ी है। नाटी किसी भी आयु वर्ग के लिए खुला नृत्य है। यह पेशेवर मंच से अधिक सामूहिक आनंद और सहभागिता का प्रतीक है। यह नृत्य तीन से चार दिनों तक सुबह और रात्रि दोनों समय किया जाता है। मूलतः लास्य शैली का यह नृत्य धीमी गति और सौम्यता के लिए जाना जाता है। पारंपरिक वेशभूषा, सजावटी पंखा, रंगीन रुमाल और नरसिंघा, करनाल, शहनाई, ढोल व नगाड़े की धुनों के साथ जब नाटी का जुलूस आगे बढ़ता है, तो यह केवल नृत्य नहीं रहता, वह हिमाचल की जीवित सांस्कृतिक विरासत बन जाता है।

कला में व्याख्या का प्रश्न : एक आलोचनात्मक विवेचना

समकालीन कला विमर्श में यह प्रश्न लंबे समय से केंद्र में रहा है कि क्या किसी कलाकार को अपनी कलाकृति की व्याख्या प्रस्तुत करनी चाहिए, अथवा कला को उसकी स्वायत्त दृश्य-भाषा के माध्यम से ही समझा जाना चाहिए। यह बहस केवल दर्शक और कलाकार के संबंध तक सीमित नहीं है, बल्कि यह कला की प्रकृति, उसके संप्रेषण और सौंदर्यशास्त्रीय स्वायत्तता से भी गहराई से जुड़ी हुई है। आधुनिक और समकालीन कला की जटिलताओं ने इस प्रश्न को और अधिक प्रासंगिक बना दिया है, विशेषकर तब जब कला संस्थान, क्यूरेटर और आलोचक व्याख्या को दर्शक तक पहुंचने का अनिवार्य माध्यम मानने लगे हैं।

पश्चिमी कला-चिंतन में इस बहस की जड़ें इमैनुएल कांट के "निर्णय की आलोचना" तक जाती हैं, जहां उन्होंने सौंदर्य-अनुभव को निःस्वार्थ आनंद के रूप में परिभाषित किया। कांट के अनुसार, कला का आनंद किसी अवधारणात्मक ज्ञान या बाह्य उद्देश्य पर निर्भर नहीं करता। इस दृष्टि से, किसी कलाकृति की पूर्व-व्याख्या दर्शक के स्वतंत्र सौंदर्य-अनुभव को बाधित कर सकती है। आगे चलकर क्लाइव बेल और रोजर फ्राई जैसे औपचारिकतावादी चिंतकों ने भी यह तर्क दिया कि कला का मूल्य उसके 'सार्थक रूप' में निहित है, न कि किसी कथ्य या व्याख्या में।

सुमन कुमार सिंह
कलाकार/कला लेखक

इसके विपरीत, बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में आर्थर डांटो और जॉर्ज डिकी जैसे दार्शनिकों ने यह स्थापित किया कि समकालीन कला को समझने के लिए संदर्भ, संस्थागत ढांचा और वैचारिक पृष्ठभूमि अत्यंत आवश्यक है। डांटो का प्रसिद्ध कथन- कला अपने आप में अर्थ का सन्निहित रूप है। यह संकेत करता है कि बिना वैचारिक संदर्भ के अनेक समकालीन कलाकृतियां 'अदृश्य' हो जाती हैं। इसी तर्क के आधार पर कलाकार के वक्तव्य और क्यूरेटरियल टेक्स्ट को समकालीन कला का अपरिहार्य अंग माना गया।

हालांकि इस प्रवृत्ति की आलोचना भी हुई है। सुसान सोंटैग ने अपने प्रसिद्ध निबंध "व्याख्या के विरुद्ध" में चेतावनी दी कि अत्यधिक व्याख्या कला के अनुभव को बौद्धिक बोझ में बदल देती है और उसकी संवेदी शक्ति को क्षीण कर देती है। उनके अनुसार, हमें कला को 'महसूस' करना चाहिए, न कि केवल 'समझना'। भारतीय कला-चिंतन इस संदर्भ में एक भिन्न, लेकिन समृद्ध दृष्टिकोण प्रस्तुत करता है। भारतीय सौंदर्यशास्त्र में कला का केंद्र 'अर्थ' नहीं, बल्कि 'अनुभव' है। भरतमुनि के नाट्यशास्त्र में प्रतिपादित रस-सिद्धांत के अनुसार, कला का उद्देश्य किसी संदेश को संप्रेषित करना नहीं, बल्कि दर्शक में रस-निष्पत्ति कराना है। यहां कलाकार की निजी भावना (भाव) और दर्शक का अनुभव (रस) एक साझा, किंतु अनिर्दिष्ट प्रक्रिया के माध्यम से जुड़ते हैं। इस परंपरा में शब्दात्मक व्याख्या को गौण माना गया है, कृति स्वयं अपना अर्थ प्रकट करती है।

आनंद कुमार स्वामी और के.सी. भट्टाचार्य जैसे आधुनिक भारतीय चिंतकों ने भी कला की स्वायत्तता पर बल दिया। कुमार स्वामी के अनुसार, पारंपरिक भारतीय कला 'क्या कहा गया है' से अधिक 'कैसे कहा गया है' पर केंद्रित होती है। इस दृष्टि से समकालीन भारतीय कला में अत्यधिक व्याख्यात्मक आग्रह एक औपनिवेशिक-बौद्धिक विरासत भी प्रतीत होता है, जो दृश्य अनुभव पर शब्दों की प्रधानता स्थापित करता है।

फिर भी, यह स्वीकार करना आवश्यक है कि समकालीन कला आज वैश्विक संस्थागत ढांचों, बिनाले, संग्रहालय, आर्ट फेयर के भीतर कार्य कर रही है, जहां व्याख्या एक प्रकार की मध्यस्थ भाषा बन चुकी है। प्रश्न यह नहीं है कि व्याख्या हो या न हो, बल्कि यह है कि व्याख्या कला का विकल्प न बन जाए, जब शब्द कृति पर हावी हो जाते हैं, तब कला का अनुभव कहीं पीछे रह जाता है।

अतः निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कला की व्याख्या एक सहायक उपकरण हो सकती है, किंतु किसी भी स्थिति में अनिवार्य शर्त नहीं। भारतीय और पश्चिमी दोनों ही परंपराएं इस बात पर सहमत हैं कि कला का मूल उसके अनुभवात्मक और संवेदनात्मक पक्ष में निहित है। ऐसे में समकालीन कला में संतुलन की आवश्यकता है, जहां व्याख्या दर्शक को आमंत्रित करे, निर्देशित न करे और जहां कला स्वयं अपनी बहुअर्थी मौन में भी बोलने की स्वतंत्रता बनाए रखे।